UGC MRP by Dr. D. M. Vankar

"SURAJPAL CHAUHAN KE SAHITYA ME DALIT VIMARSH"

Objective of the Project:

- To develop fraternity, equality, and liberty in the society.
- To obtain human rights for Dalits.
- To obtain economic empowerment.
- To obtain education so that Dalits turn to scientific and reason based approach.

समकालीन साहित्य में दलित साहित्य अपनी वैचारिक प्रतिबद्धता और विद्रोही स्वरूप को लेकर भले ही विवादास्पद रहा हो, किंतु यह बहुत ही चर्चित साहित्यिक विधा के रूप में उभरकर आया है। यह सर्वमान्य सत्य है कि जिस कौम और समाज का अपना साहित्य है, उस समाज और कौम का अपना सम्मान है, उसकी अपनी पहचान है। भारत में ब्राह्मण वर्ग का वेद, रामायण, महाभारत आदि अपना साहित्य है, इस कारण उनका अपना सम्मान है। जब तक दलितों के पास अपना साहित्य नहीं था तो उनका सम्मान भी नहीं था, उनकी अपनी कोई पहचान भी नहीं थी और वे समाज के हाशिए पर थे। वेद, गीता, रामायण का आश्रय लेकर इस देश के प्रभुवर्ग कल तक जितना सम्मानित थे उतना आज भी हैं। वह सम्मान भारत देश के बहुजनों को इसलिए प्राप्त नहीं हुआ, क्योंकि उनका अपना साहित्य नहीं था, जिसमें वे अपनी अभिव्यक्ति कर सकें, अपनी पहचान कायम कर सकें। लेकिन जैसे ही बहुजनों के हाथ में क्रांतिसूर्य ज्योतिराव फुले और बाबा साहब अंबेडकर का साहित्य प्राप्त हुआ तब बहुजन समाज जाग उठा। उसे अपने हक और अस्मिता का बोध हुआ जिसके लिए वह संघर्ष करने को तैयार हुआ। यह जागृति एक-दो दिन में नहीं आई बल्कि इसके लिए सदियों का समय लगा और पीढ़ियां समाप्त हो गईं।

अशिक्षा और अंधविश्वास ने भारतीय दलित समाज का बहुत अहित किया है। बहुजन समाज सदियों से जुल्म, अत्याचार एवं शोषण आदि का शिकार रहा है, इसके मूल में ये ही कारण थे। इस वर्ग के लोग इसे अपनी नियति मानकर सहते चले आ रहे थे, इसलिए उन्होंने प्रतिरोध का स्वर बुलंद नहीं किया और उनकी स्थिति में परिवर्तन नहीं हुआ। दलित वर्ग के उन्नायक दलितों के मसीहा डा. बाबा साहब अंबेडकर भी शोषण के शिकार हुए -यह सर्वविदित है। इसलिए डा. अंबेडकर ने स्वतंत्रता, समानता और बंधुता की बात कही। उन्होंने यह महसूस किया कि दलित समाज को सबसे बड़ी आवश्यकता है उन्हें अपने खोये हुए स्वाभिमान और आत्मसम्मान का एहसास कराने की, कि वे भी मनुष्य हैं, इसे समझाने की। दलित समाज गुलाम बनकर पैदा नहीं हुआ था, किंतु गुलाम बना दिया गया। तथाकथित

सवर्ण समाज इसे ईश्वर की देन मानता है, लेकिन यह उस समाज की सोची-समझी चाल है जिसके हाथ में समाज की बागडोर रही है। इसका एहसास होते ही उनमें चेतना जागृत हो जाएगी और अपने आप को एक असाधारण मनुष्य की भांति समझने लगेगा। इसलिए उन्होंने शिक्षित बनो, संगठित बनो और संघर्ष करो का मूलमंत्र दलितों को दिया जिसे आज वे अस्त्र के रूप में प्रयोग कर रहे हैं। दलित चेतना और दलित विमर्श की अभिव्यक्ति भारत ही नहीं, विश्व के साहित्य में हो रही है। अतः दलित विमर्श स्थानीय और एकदेशीय नहीं रह गया है, बल्कि इसका एक वैश्विक स्वरूप निर्मित हो गया है।

हिन्दी साहित्य की विविध विधाओं में दलित चेतना और दलित विमर्श की अभिव्यक्ति हुई है। आज तो गैर-दलित लेखक भी इस क्षेत्र में कलम आजमा रहे हैं तथा दलित चेतना के उभार में अपनी भी हस्सेदारी की मांग कर रहे हैं, लेकिन दलित लेखक अपनी लड़ाई खुद लड़ना चाहते हैं, वे गैर-दलित लेखकों को उसमें शामिल करना नहीं चाहते।

मेरे शोध प्रबंध का विषय है-"सूरजपाल चौहान के साहित्य में दलित विमर्श"। खुद लेखक को जो अनुभव हुए हैं, उन्होंने जो देखा है, भोगा है, झेला है, उन्हें कलमबद्ध करने का प्रयास है उनका साहित्य। सूरजपाल का समग्र साहित्य यथार्थवादी है। उनमें कहीं-कहीं आदर्शवाद भी दिखता है, किंतु उसकी मात्रा बहुत कम है और डा. बाबा साहब अंबेडकर की विचारधारा का उनके समग्र साहित्य पर प्रभाव झलकता है।

प्रथम अध्याय है-"दलित साहित्य : उद्भव और विकास"। इस अध्याय में भारतीय साहित्य की पृठभूमि और इस पृष्ठभूमि में दलित साहित्य के उद्भव तथा विकास की रूप-रेखा है। इसमें आदि सिद्ध कवि सरहपा एवं उनके काव्य का संत साहित्य पर प्रभाव, वेदकालीन वर्ण व्यवस्था, जातिवाद का जन्म, जन्माधिष्ठित वर्णव्यवस्था का प्रारंभ, कबीर पूर्व समाज का दृष्टिकोण, संत साहित्य की नूतनता, छत्रपति साहु जी महाराज, गौतम बुद्ध, महात्मा फुले और डा. बाबा साहब अंबेडकर जैसे महापुरुषों का योगदान, एकता की भावना, दलित साहित्य और विकास, स्वाधीनता आंदोलन में दलितों का योगदान, दलितों का इतिहास बोध, समकालीन लेखकों का साहित्यिक

सरोकार, अछूतपन के बदलते मानदंड आदि ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में प्रकाश डाला गया है।

दूसरा अध्याय है-"सूरजपाल चौहान का व्यक्तित्व और कृतित्व"। किसी भी रचनाकार की रचनाओं का अध्ययन करने से पहले उनके व्यक्तित्व से अवगत होना जरूरी है। शोधप्रबंध के दूसरे अध्याय में यह दिखाया गया है कि किस तरह सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक परिस्थितियों के बीच सूरजपाल चौहान का व्यक्तित्व विकसित हुआ तथा विरोधी परिस्थितियों ने उनके व्यक्तित्व को जुझारू और विद्रोही बनाया। साथ में उनके कृतित्व का परिचयात्मक एवं आलोचनात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया गया है। लेखक के बचपन से लेकर अनंत यात्रा के अंतर्गत वैयक्तिक, पारिवारिक, सामाजिक, साहित्यिक आदि अनेक घटनाओं का लेखा-जोखा प्रस्तुत है। इसमें जन्म, जन्म स्थान, जातिवंश, बचपन, प्रारंभिक अभ्यास, रहन-सहन, रीत-रिवाज, विवाह एवं दांपत्य जीवन, नौकरी, समाज सेवा, साहित्यिक प्रेरणा, विचारधारा आदि का समावेश किया गया है।

लेखक सूरजपाल चौहान का व्यक्तित्व जितना संघर्षमय एवं प्रभावशाली है, कृतित्व उतना ही बहुमुखी है। उनका सर्जनात्मक व्यक्तित्व एक ही विधा तक सीमित नही रहा, बल्कि क्रमशः विभिन्न विधाओं तक विकसित होता गया। आत्मकथा, कहानी कविता, जीवनी, बाल साहित्य आदि विधाओं में साहित्य सृजन कर अपनी बहुमुखी प्रतिभा का परिचय दिया है। साथ ही साथ प्रकाशन-प्रसारण में भी उनकी विशेष रुचि रही है। जैसे-समकालीन भारतीय साहित्य, हंस, साहित्य अमृत, संचेतना, भाषा-सेतु, हरकारा, अंगुत्तर, तीसरा पक्ष, गूंज, नंदन जैसी अनेक राष्ट्रीय स्तर की पत्र-पत्रिकाओं में कविताएं और गीत, कहानियां, बालगीत, लेख, टिप्पणियां और कथा संस्मरण प्रकाशित हैं। उन्होंने आकाशवाणी, दूरदर्शन एवं राष्ट्रीय मंचों से काव्यपाठ किया है। उन्होंने 'हिंदी के दलित कथाकारों की प्रकाशित पहली कहानी' पुस्तक का संपादन किया है। 'दलित आत्मकथा विशेष संदर्भ सूरजपाल चौहान कृत तिरस्कृत'का संकलन भी किया है। सूरजपाल को अनेक पुरस्कारों से सम्मानित किया गया है। 'साहित्य अकादमी' द्वारा नई दिल्ली में आयोजित प्रेमचंद की 125वीं

जयंती(अंतर्राष्ट्रीय संगोष्ठी) में 'प्रेमचंद एवं दलित विमर्श' में उनकी हिस्सेदारी भी रही है।

इस प्रकार सूरजपाल का व्यक्तित्व जितना प्रभावशाली है, कृतित्व भी उतना ही व्यापक है।

तृतीय अध्याय है-"सूरजपाल चौहान के साहित्य में दलित विमर्श"। तीसरा, चौथा और पांचवां अध्याय शोधप्रबंध के अत्यंत महत्वपूर्ण अध्याय है, क्योंकि लेखक का वस्तुगत परिचय पाठक को रचनाओं के माध्यम से होता है। लेखक की दृष्टि, विचारधारा, साहित्यिक रचना के पीछे उनका उद्देश्य आदि बोध पाठक को रचनाओं का पठन करने से ही होता है। सूरजपाल एक जाने-माने दलित साहित्यकार हैं, इन्होंने बहुत कम समय में ही हिंदी साहित्य जगत में अपना एक स्थान पा लिया है। उनकी विविध रचनाओं को मैंने अलग-अलग बिंदुओं के माध्यम से उद्घाटित किया है। जैसे आधुनिक द्रोणाचार्य, भारतीय समाज का अत्याचार एवं वैचारिक शोषण, दलित ब्राह्मण, लेखक का पारिवारिक विघटन एवं नैतिक साहस, भारतीय समाज में छुआछूत की भावना, निष्ठुरता एवं सवर्णों की संकीर्णता, दलित समाज की जागरूकता और आत्मसम्मान, सवर्णों का जातिगत दंभ, धर्म के नाम पर हिंदू मानसिकता, व्यवस्था के खिलाफ विद्रोह एवं अस्मिता रक्षा के लिए जागरूक दलित समाज, लेखक की आलोचनात्मक दृष्टि, दलित समाज की अज्ञानता और पारंपरिक सोच, उच्च पदासीन सामर्थ्यवाद, , दलितों की मनोदशा का चित्रण, इतिहास का सच, 1857 के संग्राम में दलितों का योगदान, इतिहास पर पुनर्लेखन की आवश्यकता ग्रामीण संस्कारों की झलक, भाषाई दासता, राष्ट्रीय एकता की भावना आदि। सूरजपाल चौहान ने गद्य लेखन के साथ-साथ दलित समाज के लिए कई गीत भी दिए हैं। आज देश के कोने-कोने में लोकगीतों की तर्ज पर लोक कलाकारों द्वारा गाये जाते हैं।

इस प्रकार तृतीय अध्याय शोध-प्रबंध की मौलिकता एवं विशिष्टता से जुड़ा हुआ है।समाज, देश, मनुष्य, शिक्षा, साहित्य, संस्कृति, महिला, कार्य, क्रांति, राजनीति, परंपराएं, साम जवाद जैसे गहन विषय उनके जीवन के चिंतन पक्ष रहे हैं। संक्षेप में इस अध्याय में सूरजपाल के समग्र साहित्य के चिंतन पक्ष पर प्रकाश डाला गया है।

चतुर्थ अध्याय है-"समकालीन हिंदी दलित लेखक और सूरजपाल का साहित्य"। इस अध्याय में मैंने हिंदी के सिर्फ चार प्रमुख दलित लेखकों-ओम प्रकाश वाल्मीकि, मोहनदास नैमिशराय, डा. जयप्रकाश कर्दम, सत्यप्रकाश को चुना है और उनके साहित्य को ध्यान में रखकर परिचय दिया है। क्योंकि इनके साथ-साथ और भी कई दलित लेखक हैं, और आजकल विविध भाषाओं में बहुत विस्तार से दलित साहित्य सृजन हो रहा है और उन सबके बारे में लिखना संभव नहीं है।

इन सब दलित लेखकों में सूरजपाल चौहान का व्यक्तित्व अनूठा है। उन्होंने बड़े बेवाक् ढंग से सच्चाइयों को लिखा है और किसी को भी बख्शा नहीं है। अपना-पराया का भेद नहीं किया, साथ ही साथ अपने समाज के प्रति लेखक की आलोचनात्मक दृष्टि रही है। इस प्रकार सच को सच कहने का साहस सूरजपाल को अन्य लेखकों से पृथक करता है। कुल मिलाकर लेखक सूरजपाल ने साहित्य को आलोचनात्मक दृष्टि से देखा है।

पंचम अध्याय है- "दलित साहित्य विमर्श में सूरजपाल चौहान के साहित्य की प्रासंगिकता।" दलित साहित्य समाजसापेक्ष है। साहित्य की मूल संवेदना के साथ-साथ दलित साहित्य समानता की भावना को सर्वोपरि मानता है। सूरजपाल चौहान के समग्र साहित्य का अध्ययन करने के बाद वर्तमान समाज की विविध समस्याओं जैसे- अधर्म, अंधविश्वास, वर्ण-व्यवस्था, सांप्रदायिकता, जातिगत भेदभाव के अतिरिक्त पूंजीवादी-साम्राज्यवादी शक्तियों के विरुद्ध बहुजन समाज युद्ध करने को आतुर हो उठा है। हमारे समाज में आर्थिक, सामाजिक, धार्मिक, राजनीतिक आदि में जाति का जो बृहद् आख्यान रचा गया है, उसकी प्रासंगिकता पर संदेह किए बिना एक नये मोर्चे की आवश्यकता महसूस की जा सकती है। इसके साथ-साथ सूरजपाल चौहान का साक्षात्कार एवं अन्य हिंदी-गुजराती दलित लेखकों के पत्रों को स्थान दिया गया है। इस अध्याय में मैंने दलित साहित्य से जुड़े कुछ बुनियादी प्रश्न तैयार किए हैं जिनके आधार पर हिंदी-गुजराती के ख्यातिलब्ध साहित्यकारों से साक्षात्कार के रूप में उत्तर या उनकी विचारधारा को जानने का उपक्रम है। उनका साहित्य जीवनगत परिस्थितियों के बीच से उद्भूत है, इसलिए प्रतिकूल परिस्थितियों के प्रति तीव्र आक्रोश है। सबसे उल्लेख्य बात यह है कि उन्होंने अपने शोषक सवर्ण समाज और सामंती परंपरा की

धज्जियाँ तो उड़ाई ही हैं, दलितों की मूर्खता, कर्मकांडी परंपरा के अनुसरण और दैवी शक्तियों में विश्वास जैसी प्रवृत्तियों पर भी जमकर व्यंग्य किया है। इस रूप में वे एक तटस्थ रचनाकार हैं तथा उनकी दृष्टि संतुलित है।

जिस तरह अंबेडकर ने सवर्ण समाज द्वारा किए गए चतुर्दिक शोषण और दिए गए दंश को झेला था, उसी तरह सूरजपाल चौहान ने भी झेला। सूरजपाल का साहित्य कल्पना का साहित्य नहीं, बल्कि वह लेखक के भोगे हुए और यथार्थ जीवन का दस्तावेज है, जिस पर प्रामाणिकता की मुहर है।

अंत में इस शोध-प्रबंध का मूल उद्देश्य है सूरजपाल के साहित्य में दलित विमर्श को उजागर करना। हिंदी में दलित साहित्य अपनी विकासात्मक सीढ़ी चढ़ रहा है, काफी हद तक इसका प्रचार-प्रसार हो रहा है। नए-नए रचनाकार उभरकर सामने आ रहे हैं। अब दलित अपने स्वरचित साहित्य के माध्यम से अपनी पहचान कायम कर रहे हैं। उन्होंने सवर्ण और शोषणधर्मी समाज के खिलाफ विद्रोह छेड़ दिया है तथा इसमें उन्हें सफलता भी मिल रही है। दलित साहित्यकारों के लेखन का ही परिणाम है कि वे आज निर्भीक होकर अपने हक की लड़ाई में शामिल हो रहे हैं।

कहना न होगा कि ज्योतिबा फुले, बाबा साहब अंबेडकर तथा मराठी साहित्यकारों ने जिस दलित चेतना और दलित विमर्श को आंदोलन का रूप दिया था, उसे सूरजपाल ने अपने साहित्य के माध्यम से एक निर्णायक मुकाम तक पहुंचाया। इसके अलावा वे विभिन्न गोष्ठियों में जाकर मंच से दलित साहित्य की मूल चेतना तथा उसके उद्देश्यों पर प्रकाश डालते हैं। अतः सूरजपाल ने न केवल लेखन के स्तर पर, बल्कि मंचों के जरिए मौखिक स्तर पर भी दलित साहित्य को समृद्ध किया है तथा दलित चेतना को विशेष गति प्रदान की है। वे हिंदी के सभी दलित साहित्यकारों की अपेक्षा अधिक आक्रामक हैं। उनके साहित्य का भी यही उद्देश्य है -दलित समस्याओं को उठाना, उनकी स्थितियों और समस्याओं का विश्लेषण करना, उनके कारणों को ढूंढ़ना तथा उन्हें दूर करने के लिए ठोस कदम प्रस्तावित करना, जिनसे दलित समस्याएं समाप्त हों। उनको मानवीय अधिकार मिले, दलित भी भारत में सम्मानित नागरिक समझे जा सकें और सम्मान का जीवन जी सकें। इस तरह सूरजपाल का साहित्य एक आंदोलनधर्मी साहित्य है, जो दलित को अपनी दुरवस्था पर सोचने को बाध्य तो करता

ही है, उससे मुक्ति के लिए प्रेरित और सक्रिय भी करता है। सही मायने में उनका साहित्य दलित विमर्श के क्षेत्र में एक महत्वपूर्ण कदम है तथा भविष्य में लिखे जाने वाले दलित साहित्य और साहित्यकारों के लिए यह मागदर्शक का कार्य करेगा।